अध्याय-दो

संजीव: समय से साक्षात्कार

२.१ संजीव और उनका समय

समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में संजीव एक विरल और विशिष्ट कथाकार के रूप समादृत हैं। वर्जित क्षेत्रों के रचनाकार है। उन्हें श्रमसाध्य और शोधपरक रचनाकार के रूप में जाना जाता है। संजीव का सारा साहित्य हर तरह के शोषण और गैर बराबरी का विरोध करता है।

हाशिये पर फेके गए लोगों को साहित्य के केन्द्र में रखने की संजीव की खासियत है। आज तक जिस समाज और वर्ग की वेदना को नजर अंदाज किया गया था, संजीव उनकी पैरवी करते हैं। देश और समाज को गदलाने वाली सारी अमानवीयता की वे धज्जियाँ उड़ाते हैं। अपने साहित्य में सदियों से अभिशप्त जीवों को वे संघर्ष की धार देते हैं। उनके यहाँ लड़ने वाली 'औरत दुनिया की सबसे हसीन और सर्वहारा वर्ग आदि को वे लड़ने का वैचारिक खाद देते हैं। उनके लेखन में जातिवाद, धार्मिक अधमान्यताएँ, सामंतवाद, पूँजीवाद, उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण आघात के केन्द्र रहे हैं। वर्ग-विरहित समाज की रचनाओं में वे माक्र्स का अनुकरण करते हैं तो जाति-विहीन समाज के लिए महात्मा ज्योतिबा फुले, राजर्षि शाहू महराज और डा॰ बाबा साहब

आम्बेडकर का। वे इसके आगे 'जेण्डर' तक जाते हैं। वर्ग, वर्ण, लिंग-मुक्ति के लिए तीनों के प्रति जवाबदेह होना जरूरी है।'

संजीव का जन्म ६ जुलाई, १९४७ को 'बांगरकला गाँव' जिला सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। यह परिवार श्रमिक निम्न मध्यवर्गीय था। भारतीय ग्राम की सारी सड़ी-गली मान्यताएँ 'बांगरकला गाँव' में बड़ी मुस्तैदी के साथ मौजूद है। संजीव अपनी जन्म तिथि को वास्तविक की अपेक्षा खानापूर्ति अधिक मानते हैं। जिस परिवार की अधिकतर ऊर्जा रोजी-रोटी के लिए खर्च होती है। वहाँ किसी बालक का जन्म विशेष महत्व नहीं रखता। गाँव के बालकों की जन्म तिथियाँ अधिकतर मास्टर या हेडमास्टर ही स्कूल में दाखिला कराते समय अनुमानित करते थे। संजीव के संदर्भ में भी यही सत्य है। डा॰ रविशंकर सिंह के साथ बातचीत में संजीव ने कहा है कि- ''मेरे जैसे परिवार के लिए जन्म तिथि कोई महत्व की बात नहीं थी। इसे पाँचवी में नाम लिखाते समय हेड मास्टर साहब को ही ईजाद करनी पड़ी। जहाँ तक वास्तविक जन्मतिथि का सवाल है, इसके बारे में मुझे इतना ही बताया कि अमूक के गौने के समय (हाथ से ऊँचाई बताते हुए) मैं इतना बड़ा था और उस दिन जमकर बारिश हुई थी।''

संजीव का बचपन अभावों से भरा था। वे बचपन से ही पढ़ने-लिखने में तेज थे। आज की जो उनकी यायावरी वृत्ति है उसके बीज तो

बचपन में ही दिखाई देते थे। वे बचपन की अवस्था में नंग-धड़ंग सियारों, नीलगायों को देखते। इन्हें देखने में उन्हें गजब का मजा आता था। जिज्ञासु वृत्ति तो बचपन से ही उन पर हावी है। खेलकूद में भी वे अक्सर रुचि रखते थे। अधिकतर खेल के तो वे मुखिया हुआ करते थे। गरीब परिवार में जन्म लेने के कारण अक्सर उन्हें जानवर चराने पड़ते थे। आज वे कहते हैं अगर मेरे चाचा मुझे कुल्टी नहीं ले आते तो गाँव में अन्य बच्चों की तरह ही दूसरों का बनिहार या हलवाहा बनकर जीना पड़ता। 'बांगरकला गाँव' में ब्राह्मणों और ठाकुरों की दहशत थी जिसे हम संजीव के प्रथम उपन्यास 'किसनगढ़ के अहेरी' (पुनर्लेखन अहेर) में देख सकते हैं। वर्ण व्यवस्था के तहत सवर्णों की सेवा का काम ही करना पड़ता था। संजीव के परिवार को कुम्हार होने के कारण दलितों के समान छुआ-छूत की तो समस्या नहीं थी पर आर्थिक समस्या बड़ी भयंकर थी। बचपन की अवस्था में ही उन्होंने गाँव के नरक को महसूस किया था। कुल मिलाकर संजीव का बचपन आम गरीब परिवार के बालकों के समान अभावों में और परिवार को मदद करने हेतु जानवर चराने, खेलने आदि में बीता।

बीस-पच्चीस लोग परिवार में खाने वाले थे और उनके भरण-पोषण के लिए डेढ़ बीघा उपजाऊ और चार बीघा ऊसर भूमि थी। इससे अनुमान लगाया जाता है कि परिवार की आर्थिक स्थिति कैसी रही होगी।

कुम्हार जाति का परम्परागत व्यवसाय मिट्टी के बर्तन बनाना, जो संजीव के जन्म तक आते-आते बंद हो गया था। फिर भी इस परिवार में दशहरे के समय दुर्गा आदि पूजन की बड़ी मगर अनगढ़ प्रतिमाएँ बनती थीं जिसकी आमदनी न के बराबर थी। पारिवारिक अभाव और सामंती शोषण से तंग आकर ही संजीव के पिता और चाचा विस्थापित होकर पश्चिम बंगाल की कुल्टी औद्योगिक कस्बे में आ गए थे। अपनी पारिवारिक स्थिति का यथातथ्य वर्णन संजीव अपनी 'पिशाच' कहानी में करते हैं- ''एक तरह से उनके बंधुआ मजदूर थे हम। मेरे बाबा और दादी महातम बाबा के खेत के कौए-सुग्गे, उड़ाते, दादा और काका हलवाही करते, माँ और काकी अंदर से लेकर बाहर तक के सारे काम। शाम को मिलने वाली मजदूरी, जो प्रायः किनकी, कोदो या घुन लगे जौ-मक्का की होती, को पीसकर रोटी बनती।'' यह स्थिति केवल संजीव के परिवार की ही नहीं दो-एक परिवार को छोड़कर सारे कमोवेश मात्रा में इसी गरीबी के शिकार थे। महामारी में इसका भयावह चित्रण है।

संजीव के नौकरी पेशा बनने के बाद भी इस स्थिति में विशेष अन्तर नहीं आया। इसका कारण बताया जाता है कि चार लड़कियाँ और एकमात्र बेटे संतोष कुल मिलाकर पाँच संतानों की शिक्षा-दीक्षा और उनके भविष्य को बनाने की कोशिश में चाहकर भी दिल्ली में बसे अन्य लेखक मित्रों के बच्चों के समान न बना पाने की टीस उनके मन में है। अब

संजीव दादा बने हैं। उनकी पुत्रवधू स्वयं संजीव की बहू होने का गर्व महसूस करती है।

कुल्टी का लौह कारखाना बंद होने के कारण संजीव को जबरन वीआरएस लेनी पड़ी। अब वे दिल्ली में बसे हैं। वे अपनी बाकी जिन्दगी कुल्टी में रहकर ही लेखन करना चाहते थे पर अब कुल्टी उजाड़ बन गया है। ताउम्र पारिवारिक गरीबी से जूझते हुए वे शारीरिक तौर पर थक गए-से लगते हैं। जिन भाई और भतीजों को समय-समय पर वे मदद करते आए थे, अब भाई तो नहीं रहे पर भतीजों से सम्बन्ध वैसे नहीं रह गए।

बचपन से ही शिक्षा का लगाव था। कक्षा में अव्वल स्थान हासिल करने के चलते अक्सर स्कूल की फीस माफ की जाती थी। संन्यासी स्थान के पीपल के नीचे शिवजी के चैरे पर या फिर रामेश्धर गुरूजी के एक कमरे के घर में पाठशाला चलती थी। वही संजीव ने स्लेट पकड़ना सीखा, दूसरी कक्षा में उनका दाखिला केंदुआ प्राइमरी विद्यालय, कुल्टी में किया गया। एक भयंकर बारिश में तो उनके साथ उनकी किताबें भी पानी में बह गई थी किसी तरह बच गए फिर तीन साल जप कर सीधे पाँचवीं में उसी केन्दुआ उच्च विद्यालय में। तेरह साल की अवस्था में हाईस्कूल पूर्ण किया। भैया इंजीनियर या डाॅक्टर बनाना चाहते थे। पर पैसों की किल्लत से यह संभव न था। सत्रह साल की अवस्था में बी•एस•सी• पास की। आगे शिक्षा की अपेक्षा रोजगार की खोज

समय की मांग थी। कुल मिलाकर उनकी शिक्षा कुल्टी के केन्दुआ हाई इंग्लिश स्कूल, बी•बी• कॉलेज, आसनसोल और बाद में कोलकाता में सम्पन्न हुई। गोया की शिक्षा भी पैबन्द दर पैबन्द।

संजीव के पूर्वजों में उनके पिता और चाचा का ही जिक्र अधिक आया है वैसे संजीव का परिवार संयुक्त था। पिता का नाम रामशरण प्रसाद था और माता का नाम जयराजी देवी। उनके परिवार को अक्सर हादसों का सामना करना पड़ा है। ''तीन साल की उम्र में रोने पर तरह-तरह से बहलाकर चुप कराने वाले भैया को वर्ष १९९४ में दिल का दौरा पड़ा। वे चल बसे। माँ मंझले बेटे की लाश को देखकर खुद को संभाल नहीं पाई। उसने भी अलविदा कह दिया। पिता भी ऐसी ही किसी कचोट में मरे थे। संजीव को पढ़ाने वाले अनपढ़ काका अंधे-अपाहिज, मुफलिस होकर कुएं में गिरकर मरे।''

संजीव का विवाह माता-पिता की इच्छा के अनुसार हिन्दू परम्परा के तहत नौ-दस साल की अवस्था में हो गया पर पत्नी आई गौने में वर्ष १९६२ में दोनों प्राणी साथ तो है पर एक-दूसरे से वैचारिक तौर पर अनभिज्ञ। संजीव साहित्य प्रेमी और क्रान्ति प्रेमी। प्रभावती देवी भगवान प्रेमी। वे कहती हैं ये एक अच्छे कथाकार हो सकते हैं लेकिन इन्होंने अपने परिवार पर कभी ध्यान नहीं दिया। अनमेल स्वभावों के चलते परिवार में कभी-कभी मनमुटाव भी रहा करता था। संजीव पत्नी को

समझाकर अपने रास्ते चलाना चाहते पर पूर्ण सफलता नहीं मिलती। दोनों प्राणी अब दादा-दादी, नाना-नानी बने हैं और अपनी स्टाइल में एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। ग्राम्य संस्कार में पत्नी प्रभावती देवी चैथी कक्षा तक पढ़ी है।

अठारह साल की अवस्था पूरी नहीं हुई थी कि इंडियन आयरन ऐंड स्टील कम्पनी केमिस्ट के तौर पर वे काम करने लगे। बाद में एआईसी (केमिस्ट्री की परास्नातक) डिग्री के समकक्ष की परीक्षा भी पास की पर नौकरी या आर्थिक आय में फर्क नहीं पड़ा। वे कुल्टी में बच्चों को प्रायः सारे ही विषय पढ़ाया करते। ट्यूशन में गरीब बच्चों को फीस माफ की जाती थी। सो मास्टर साहब के नाम से प्रसिद्ध होना ही था, हुए। आर्थिक समस्याओं से कुछ ही बच्चे जब शिक्षा में पिछड़ने लगे तब उन्हें ग्लानि होती जिसका दर्द 'मरोड़' कहानी में उभरा है।

नौकरी करते समय जो छुट्टियाँ मिलती उसका उपयोग संजीव छिटपुट आन्दोलनों, साहित्य लेखन के लिए करते या यायावरी करने में। 'यह आदमी कहानी और उपन्यासों की डीटेल्स खोजने घूमता रहता।' संृजय संजीव के सन्दर्भ में कहते हैं- ''वैसे यह आदमी कुछ भी कर सकता है। किसी बीमा कम्पनी की एक जमाने में इसने एजेंसी भी ली थी और बीमा कम्पनियों के कुचक्र पर एक कहानी लिखकर छपवा दी तो एजेंसी छूट गई, यह कोई छोटा-मोटा बिजनेस कर सकता है।'' एक

जमाने में यह आदमी बहुत अच्छा ट्यूमर हुआ करता था। सब सब्जेक्ट पढ़ाने वाला, पहले दर्जे से लेकर स्नातक स्तर तक का साहित्य, गणित, विज्ञान, सामान्य ज्ञान, करंट अफेयर्स, अंग्रेजी-हिन्दी, बांग्ला, संस्कृत सब कुछ ठूस देता था बच्चों के दिमाग में, मगर अपने ही बच्चे, 'बहेंगवा' बनने लगे तो इसके मन में मरोड़ उठा और एक और कहानी लिख मारी.....इस भांति इस वसीले को भी लात मार दी।'' दिल्ली अक्सर संजीव को डराती थी पर वर्ष २००३ में इंडियन आयरन एंड स्टील कम्पनी बंद होने पर उन्हें स्वेच्छा सेवानिवृत्ति लेनी पड़ी और कुल्टी छोड़ना पड़ा। अशोक भौमिक के कहने पर दिल्ली आए, रे-माधव प्रकाशन के संपादक बने, फिर राजेन्द्र यादव के साथ 'हंस' के कार्यकारी संपादक। संजीव के पिता को रिटायर्ड होने तक क्वार्टर नहीं मिला और संजीव को ३८ साल की नौकरी में भी। हार कर खुद का आश्रय बनाना पड़ा। २०-२० साल तक कोई प्रमोशन नहीं। क्रान्तिधर्मिता का पुरस्कार।

आर्थिक दुर्दशा की वजह से ही यह व्यक्ति चाहकर भी परिवार को सुख-सुविधाएँ नहीं दे सका। बच्चों को अच्छी शिक्षा देकर काबिल नहीं बना सका जैसे अन्य लेखक करते हैं। आर्थिक सुधार के लिए कभी 'बीमा कम्पनी की एजेंसी में पार्ट टाईम काम करने लगा तो कभी ट्यूशन लेने लगा पर विकल्प सही अर्थ में सहायक नहीं बन सके। 'सूत्रधार' उपन्यास लेखन के लिए जो फेलोशिप मिली, उससे घर को

संस्कारित किया गया। जी•टी• रोड पर उनका यह घरौंदा भी कारखाने के बन्द होने पर औने-पौने दाम पर बेचना पड़ा। राजेन्द्र यादव को लिखे पत्र में संजीव की आर्थिक दशा झलकती है- ''आपने यश और अर्थ की प्राप्ति की जो आशा मेरे लिए संजोई थी, उसमें 'अर्थ' तो धूलिसात हो गया बचा बाकी 'यश' जिसके लिए उन पत्रिकाओं में प्रकाशन के आधार पर लोभ पालना ठीक नहीं.....अर्थाभाव का दंश ही फिलहाल मेरे लिए समस्या है, जिसकी काली छाया स्वच्छंद लेखन पर पड़ने लगी है। खैर.....।''

प्रारम्भिक अवस्था में दिनभर मजदूरी करके ही संजीव के परिवार का गुजारा होता था। संजीव के निम्न मध्यवर्गीय किसान श्रमिक परिवार के होने के कारण उनके व्यक्तित्व की संवेदना आम आदमी के साथ जुड़ी है। सर्वहारा वर्ग के दुख-दर्द, पीड़ा को वाणी देना उनकी रचनाओं का मूल है। वर्तमान समय के सबसे सशक्त शोधपरक और श्रमसाध्य साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध है। अपने लेखन को वे उद्देश्य परक मानते हैं खुद को 'लेखक' नहीं, 'लिटररी एक्टिविस्ट'। कविता को भावाभिव्यक्ति का प्रारम्भ में उन्होंने माध्यम बनाया पर कविता में भावाभिव्यक्ति को सही रूप में अंजाम न दे पाने के कारण संजीव ने अपनी कलम उपन्यास और कहानियों की दिशा में परिवर्तित की। एक से एक वर्जित क्षेत्र की वास्तविकता, दयनीयता को अभिव्यक्त किया। व्यवस्था की भयावहता के खिलाफ वे खड़े होते हैं। अपनी रचनाओं के

सन्दर्भ में वे कहते हैं- ''मेरी हर रचना मेरे लिए शोध की प्रक्रिया से गुजरना है और लिखना मेरे लिए चैबीसों घण्टे की प्रक्रिया-प्रश्न भी है, समाधान भी, यातना भी है और यातना से उभरने के माध्यम भी, निपट एकांत गुफा भी है और पछाड़ खाती झंझा में उतरने का साधन भी, हर पल तिल-तिल कर मरना भी है और मौत के दायरों के पार जाने का महामंत्र भी।'' ये तमाम यातनाएँ सर्वहारा वर्ग को यातनामुक्त करने हेतु स्वीकार्य है।

न्यूनताओं के बावजूद धनात्मक बिन्दु साहित्य की गतिविधियों से पारिवारिक सम्पृक्तता थी। माता-पिता से साहित्य लेखन की प्रारम्भिक प्रेरणा मिली। भाई साहित्य में रूचि रखते थे परिणाम स्वरूप साहित्य लेखन की नींव घर में रखी गई। प्रेमचंद, सुदर्शन को पढ़कर तो साहित्य लेखन का इरादा ही बना लिया। संजीव अपना साहित्यिक गुरु नरेन्द्रनाथ ओझा को मानते हैं जिनकी प्रेरणा से उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया। देश की बदहाली पर संजीव मित्र-सूरज के साथ मिलकर प्रधानमंत्री को जो पत्र लिखते थे। पत्र की वह छटपटाहट आज भी उनके साहित्य में दिखाई देती है। संजीव लेखन में किसी लीक का अनुकरण नहीं करते। लीक से परे वर्जित क्षेत्रों की खाक छानते हैं। धीरे-धीरे देश-विदेश के परिवर्तनकामी साहित्यकारों की रचनाओं और उनके जीवन संघर्षों ने लेखन को 'धार' दी है। भगत सिंह तथा अभावग्रस्त लैब

में 'रेडियम की खोज' करने वाली मैडम क्यूरी उनकी आदर्श है। वर्तमान समय में कमलेश्वर, नागार्जुन, राजेन्द्र यादव आदि साहित्यकार उनके लेखन को प्रेरित करते हैं। विजयन (मलयालम) रवीन्द्र शरत, माणिक, प्रेमेन्द्र बांगला में, मंटो, नानक पंजाबी विदेशी लेखकों में गोर्की, आप्टेन सेनक्लेयर, लुसुन मार्कट्वेन, स्टाइन बेक, नार्दीमीर आदि कवियों में नजरूल, रवीन्द्र, सुकांत, जीवनानंद दास, इकबाल, मीट, कबीर, संजीव के लेखन की मूल प्रेरणा में दलित, दमित, प्रताड़ित बहिष्कृत जन है। अपने लेखन की प्रेरणा के संदर्भ में स्वयं कहते हैं-

''समाज में उपेक्षित, पीड़ित, दबे एवं कुचले हुए लोगों से मुझे कथा लेखन की ऊर्जा मिलती है। जिसमें संभावनाएँ हो उसी से मुझे प्रेरणा मिलती है।''

समाज में भाईचारा का निर्माण करके हर तरह के शोषण को वे नष्ट करना चाहते हैं। महाराष्ट्र के दलित आन्दोलन या स्त्री-विमर्श के वे हिमायती है। उनकी मान्यता है कि शरीर के जिस हिस्से में पीड़ा होती है ध्यान बार-बार उसी हिस्से की ओर आकर्षित होता है। उसी तरह समाज का जो हिस्सा पीड़ित है उसकी ओर ध्यान जाना या उस पर लिखना सहज बात है। न केवल उत्पीड़न नष्ट करने हेतु लिखते हैं बल्कि वे प्रत्यक्ष आन्दोलनों में हिस्सा भी लेते हैं। वर्ग वैषम्य को नष्ट करने हेतु ही वे माक्र्सवाद के वैचारिक पक्षधर बने हैं। 'जाति तोड़ो इंसान जोड़ों' का

नारा वे साहित्य के द्वारा देते हैं। जाति और सांप्रदायिकता के वे घोर विरोधी हैं। समाज में फैले श्रेष्ठता कनिष्ठता के भेद व पदानुक्रमता उन्हें मान्य नहीं। आदिवासियों को भयावह अवस्था से परिचित कराकर उन्हें मुख्यधारा में ले आया जाए, ऐसी संजीव की मान्यता है।

शोषण मुक्त समाज के निर्माण में राजनीति विशेष महत्व रखती है। अगर राजनीति चाहे तो देश और समाज की स्थिति में बदलाव ला सकती है। जब सभी स्थितियों पर राजनीति हावी होती है तो साहित्य राजनीति से अप्रभावित कैसे रह सकता है। वर्ष १९९० के दौर में जो बाजारवाद आया है उसे रोकना चाहिए नहीं तो विपरीत परिणामों से देश को झुलसना पड़ेगा। राजनीति, जाति, धर्म, मजहब, प्रदेश, आंचलिकता, लिंगभेद आदि से परे होनी चाहिए।

राजनीति में जो विरासतें चल रही हैं उसका वे विरोध करते हैं। संवैधानिक तौर पर सभी मनुष्य समान हैं पर आर्थिक और सामाजिक समानता के अभाव में यह बात कोई मायने नहीं रखती। शोषित समाज के प्रतिनिधि भी जब सत्ता में आ जाते हैं तो अक्सर अभिजात्यों के समान रवैया अपनाते हैं। राजनीति अक्सर जाति केन्द्रित बन गई है। सांसदों की तनख्वाह पाँच गुनी बढ़ जाने पर संजीव जून २०१० के 'हंस' में पृष्ठ ९५ पर कहते हैं कि राजनीति स्वयं तनख्वाह बढ़ा सकती है। आम-आदमी का क्या? नक्सल समस्या का समाधान सौ दिनों में

निकालने वाली सरकार की घोषणा को भी आड़े हाथों लेते हैं। नक्सल पर राजनीति अगर समाधान खोजती तो दंतेवाड़ा में ७६ अर्द्धसैनिकों को शहीद नहीं होना पड़ता और न ही ज्ञानेश्वरी एक्सप्रेस ब्लास्ट में १५० यात्री मारे जाते और न ही छोटे-मोटे हादसों का देश को सामना करना पड़ता। सोनी सूरी की योनि में पत्थर भरे जाते हैं। हम कैसे देश में रहते हैं?

२४ तथा २५ फरवरी, २०१० को श्री शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी, जि•-सोलापुर के द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में एक प्रश्नकर्ता ने प्रश्न किया था कि संजीव जी आपने आदिवासी जीवन पर काफी लिखा है, क्या आपके लेखन से आदिवासियों की दशा में कुछ अन्तर आया है? संजीव ने विनम्र मायूसी में दुख के साथ कहा -नहीं। केवल लिखने मात्र से बदलाव की उम्मीद कम ही होती है। बदलाव तो राजनीति सापेक्ष है। दुनिया को बदलने के संदर्भ में वे अपनी राय देते हैं- ''सिर्फ लिखने से कोई बदलाव नहीं होने वाला है। समाज और दुनिया में और दुनिया को बदलने की ताकत सजग, सक्रिय और दूरदर्शी राजनीतिक हस्तक्षेप ही रखती है।'' लेकिन हम एकदम आश्वस्त है कि संजीव आजीवन अपनी रचनाशीलता को आदमी और समाज को बेहतर बनाने के लिए धारदार बनाते रहेंगे। संजीव माक्र्सवादी राजनीति से आशा करते थे, देश और

समाज को बदलने की। पर माक्र्सवादी राजनीति भी अंतर्विरोध और सनातन मनोवृत्ति के कारण अंधकूप में भटक रही है।

संजीव के मित्र हर तरह के हैं। नेता, मंत्री, गुंडे, वे जहाँ-जहाँ रहे, जिस-जिस समाज के साथ उनका सम्बन्ध आया वहाँ-वहाँ उनके मित्र बिखरे पड़े हैं। समाज के शोषक भी और शोषित भी। अमीर से लेकर रिक्शे वाले तक को वे अपना मित्र बना लेते। केदारनाथ सिंह, नरेन्द्रनाथ ओझा, भोलानाथ सिंह, राम शिरोमणि पाण्डेय आदि भी उनके मित्र है और तलहट के लोग भी बचपन में सूर्यनारायण शर्मा के साथ मिलकर वे देश की बदहाली को लेकर प्रधानमंत्री को पत्र लिखा करते थे। सूर्यनारायण शर्मा की मृत्यु के बाद भी संजीव उनके पारिवारिक मित्र बने रहे। गाँव के ब्राह्मण और ठाकुर शोषकों के बच्चे भी संजीव के मित्र हैं। पूर्वाग्रह दूषित रवैया वे कभी नहीं अपनाते। आगे वे मित्रों की सूची में डा॰ रविभूषण, शिवमूर्ति, गौतम सान्याल, दिनेश कुशवाह, नरेन, श्रीनिवास ठाकुर, बलराम, सुवास कुमार, आर॰सी॰ ओझा, देवनाथ सिंह, रविशंकर सिंह, मनोज कुमार शुक्ल, दिनेश लाल, संजय भालोटिया, आनन्द अमर नाथ गुप्ता, शिव कुमार यादव, प्रेमपाल शर्मा, ओम प्रकाश मिश्र, ममता सिंह, किरण सिंह, मधु कांकरिया, विवेक मिश्र, हरियशराय, डी॰एम॰ मिश्रा आदि को जोड़ते हैं। उनकी मित्रों के साथ पारिवारिकता है। संजीव जीवन का सबसे बड़े सबल मित्रों को मानते हैं जो दूर-दूर तक फैले हैं। संजीव के

मित्रों की सूची इतनी लम्बी है कि जिसे 'आदि' शब्द के द्वारा ही विराम दिया जा सकता है। लोकप्रियता का हाल यह है कि कुल्टी में एक सम्मान समारोह में भीड़ इतनी बढ़ गई कि थ्रीटायर सम्मेलन हो गया।

संजीव माक्र्सवाद के हिमायती हैं। उन्हें लगता था हर तरह की समस्या का समाधान माक्र्सवाद है बशर्ते ईमानदारी से अनुपालन हो। पर बाद में उनके विचारों का यह भ्रम टूट गया। भारत में वर्ग की अपेक्षा वर्ण महत्वपूर्ण है। वर्ण से उत्पन्न जाति को खत्म किए बगैर आर्थिक और सामाजिक गैर बराबरी को नष्ट करना असम्भव है। माक्र्सवाद में जातिभेद नष्ट होगा ऐसा प्रारम्भ में माना जाने लगा था। पर जो सवर्ण फैशन के तहत माक्र्सवाद में आए थे उन्होंने 'जाति तोड़ों' आन्दोलन को हाशिये पर फेंका। परिणाम स्वरूप भारत में जाति तोड़े बगैर इंसान को जोड़ने का काम किया गया जिससे श्रेष्ठ-कनिष्ठता का भाव जस-का-तस बना रहा। शायद कुछ माक्र्सवादियों ने सामंतवाद और पूँजीवाद आदि शोषकों के साथ गुप्त समझौता कर लिया इसलिए माक्र्सवाद का जनाधार घटता जा रहा है। संजीव माक्र्सवाद के पतन पर कहते हैं- ''माक्र्सवाद के नाम पर भारत में जो कुछ भी चल रहा है, यह उसके अंतर्विरोधों के विस्फोट की करूण गाथा है।''

सतत द्वंद्वात्मकता को वे आदि मंत्र कहते हैं। द्वन्द्व से नयी चीज बनती है। ठहराव से पानी भी सड़ जाता है। अतः पुनः पुनः द्वन्द्व।

माक्र्सवादियों ने बदलाव को नहीं स्वीकारा। वर्ग संघर्ष को रूस-चीन से जैसा-का-तैसा आयात किया। जिससे माक्र्सवाद देश की मिट्टी से जुड़ नहीं सका। माक्र्सवादी विचारधारा भारतीय जनमानस को परायी लगने लगी। अधिकतर शीर्षस्थ स्थानों पर सनातनी होने के कारण अपनी श्रेष्ठता का दम्भ उनमें बना ही रहा। सामाजिक अंतर्विरोधों के चलते काॅस्टलेस सोसाइटी का निर्माण सम्भव नहीं हो सका। काश केवल माक्र्स का ही गुणगान करने की अपेक्षा बुद्ध मक्खली गोशाल, कबीर, महात्मा फुले, डाॅ॰ बाबासाहब आम्बेडकर, राजर्षि शाहू महाराज आदि की भूमिका को स्वीकार किया होता।

विज्ञान का छात्र होने के नाते जिस किसी विषय को उठाते हैं, उस पर पर्याप्त शोध करते हैं। 'सर्कस' उपन्यास लिखते समय सर्कस का इतिहास और उसके आंतरिक घात-प्रतिघात जानने के पीछे कितना श्रम, पैसा और समय जाया हुआ। कोयला खदान से सम्बन्धित कहानी या उपन्यास लिखने के पहले रविबाबू के पितामह प्रिंस द्वारकानाथ टैगोर की दो सौ वर्ष पुरानी खदान समेत कितनी खदाने देखते-परखते हैं। 'टीस' कहानी के लिए वह संपरों के गाँव गए थे। रास्ते में ट्रैफिक जाम होता है उसे वैश्विक हड़बोंग से जोड़कर 'ट्रैफिक जाम' कहानी लिखी। 'तिरबेनी' का तदबन्नां कहानी लिखने के लिए सहकर्मी के तदबन्ने (कुलतोड़ा, वर्धमान) में पड़ाव डाला और ताड़ी उतारने की तकनीक सीखी। फिर गाँवों का

अध्ययन करते रहे। 'अपराध' जैसी कालजयी कहानी लिखने हेतु बंगाल से लेकर उत्तर प्रदेश के थानों और कचहरियों के चरित्र को खंगालते रहे। 'हिमरेखा' लिखने के लिए देहरादून से चकरौता तक के बहुपतित्व की प्रथा को समझने के लिए सशक्त की। 'सागर सीमान्त' और 'बाघ' कहानियों के लिए सुंदरवन का दौरा किया तो 'आरोहण' के लिए हिमालय और पर्वतारोहण संस्थान।

'सावधान! नीचे आग है' लिखते समय स्वयं खदानों में उतरकर मुआयना करते थे। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास लिखने के लिए 'मिनी चंबल' के नाम से प्रसिद्ध पश्चिमी चंपारण, बिहार और नेपाल के घने जंगलों में सालों भटकते रहे। भिखारी ठाकुर पर जीवनी परक उपन्यास 'सूत्रधार' लिखने के लिए भिखारी ठाकुर के गाँव कुतुबपुर और जाने कहाँ-कहाँ, जाने कितने-कितने दिन भटकते रहे। 'रह गई दिशाएँ इसी पार' में तो देश से विदेश तक.....। संजीव की खोजी वृत्ति को देखते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं- ''संजीव की ट्रेनिंग एक वैज्ञानिक की तरह हुई है। वे जिस विषय को उठाते हैं उसके एक-एक पक्ष की गहराई तार्किकता से शिनाख्त करते हैं।'' संजीव की कोशिश ज्यादातर कहानियों और उपन्यासों में यथार्थ के ब्यौरे देने और हर तरह के परफेक्शन की होती है, मानो वे कोई रिपोर्ट तैयार कर रहे हों, जिसके

लिए बंद कमरे में बैठकर लिखना असंभव है। उनके नये उपन्यास 'रह गई दिशाएं उसी पार' और 'फाँस' इसके ज्वलंत उदाहरण है।

संजीव स्त्री-पुरूष समता के पक्षधर हैं। वेश्या का व्यवसाय करने वाली स्त्री के प्रति भी वे संवेदना रखते हैं। नारी को न्याय देने हेतु वे व्यवस्था के दरवाजे पर दस्तक देते हैं। स्त्री और पुरूष के बीच का लिंग भेद मामूली है। स्त्री और पुरूष एक-दूसरे के पूरक हैं, न कि विरोधी। एक-दूसरे को सम्मान देने पर परिवार, समाज और देश का कल्याण होगा। पुरूष की उत्पत्ति में नारी मूल है फिर पुरूषों द्वारा नारी का उत्पीड़न अमानवीय नहीं लगता? 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' लड़ाकू औरत को मानते हैं। जुल्म और अन्याय के खिलाफ लड़ने वाली स्त्री उन्हें भाती है। जैसे 'अपराध' कहानी की संघमित्रा, 'प्रेरणास्रोत' कहानी की जंगली बहू, 'धार' उपन्यास की मैना, 'फाँस' की कलावती (छोटी) आदि नारी पात्रों में संजीव संघर्ष की चिंगारी भरते हैं। नारी को मजबूर करके जब तक प्रताड़ित किया जायेगा तब तक नारी मुक्ति की घोषणाएँ व्यर्थ हैं। नारी की मजबूरी का फायदा उठाकर ही उसे नर्क में ठेला जाता है। संजीव वेश्या और क्रीमीलेयर नारी के साथ ही सामान्य प्रताड़ित नारी के संदर्भ में विचार रखते हैं- ''क्रीमीलेयर वाली नारियाँ सवर्णवाद की तरह 'नारी मुक्ति' के नाम पर अगर अपना ही भला न सोचें तो कुछ कहा जा सकता है। सेक्स अपने आप में सेक्युलर है। नारियाँ जब तक अनचाहे

गर्भधारण की मजबूरी और आर्थिक परतंत्रता की शिकार बनी रहेंगी नारी मुक्ति संभव नहीं होगी।''

उनके तमाम नारी पात्रों के अध्ययन से पता चलता है कि हिन्दू कोडबिल की तरह वे नारी के आर्थिक अधिकारों को भी मान्यता देते हैं। जब तक नारी को आर्थिक अधिकार नहीं मिलेगा तब तक परिवार और समाज में वह परजीवी बनकर ही रहेगी फिर उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ेगा। पुरूषों के समान ही सारे अधिकारों की नारी अधिकारी है। स्त्री शोषण के खिलाफ सख्ती बरती जाय ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता है।

वैज्ञानिक उपलब्धियों के चलते आज मनुष्य जेट गति से उड़ रहा है नाश्ता देश में तो खाना विदेश में। पर आज मत्स्य-न्याय भी पाशविक बन गया है। पहले अमीर गरीब इंसान को निगलता था आज तो देश-देश को निगल रहा है। हमारे रिसोर्सेस हड़प लिए जा रहे हैं। विश्व बन्धुत्व भाववादी अवधारणा है, सत्य नहीं है। जिसमें असमानता अधिक है। अमेरिकी कम्पनियाँ हमारी चीजों का दोहन कर रही है। उदारीकरण में मुक्त बाजार है जिसमें प्रतिबन्ध खत्म करना है। भूमण्डलीकरण में बाजार का जाल बिछाया गया है। अब उनका बीज है, उनकी खाद, उनका बाजार, उनके शर्ते। हम केवल ग्राहक हैं।

सूचना क्रान्ति पर बाजारवाद का कब्जा है, यह वंचितों की मुक्ति के लिए नहीं, पूँजिपतियों और अपराधियों की शक्ति बढ़ाने के काम

आ रही है। बाजार ने साहित्य, कला और संस्कृति को निरर्थक बनाया है। एक ओर नंग-धड़ंग भूखी आबादी तो दूसरी ओर फैशन शो चल रहे हैं। जरूरी चीजों की अपेक्षा सौन्दर्य प्रसाधनों में हमें अटकाया जा रहा है। वर्तमान बाजार के वास्तविक रूप को दर्शाते हुए उनके पात्र कहते हैं- ''तुम्हारें और तुम्हारें देश की बढ़ती आबादी, बढ़ते कर्ज, बढ़ती महंगाई और खत्म होते रोजगार, गरीबी, अशिक्षा, गुंडागर्दी तो आम बात है, असल चीज है कील मुंहासे, फटी एड़ियाँ गालों की लुनाई,! यह सामान लोगे तो, यह सामान फ्री मिलेगां।''

अंग्रेजी स्कूल बुनियादी स्तर पर करोड़ों शिशुओं, बच्चों से उनकी मातृभाषा छीनकर बाजारवाद की भाषा में शिक्षित-प्रशिक्षित करने का काम कर रहे हैं। जब किसी देश को नष्ट करना है तो पहला वार साहित्य पर होता है। मौजूदा तंत्र भी वही कर रहा है क्योंकि साहित्य ही उसका विरोधी तत्व है। भूमंडलीकरण और बाजारवाद का प्रभाव अमेरिका के साथ-साथ भारत पर भी पड़ा है। संजीव भूमंडलीकरण और भाषा के संदर्भ में अपने विचार रखते हैं- ''भूमंडलीकरण और बाजारीकरण के चलते अमेरिका में लगभग दो-तिहाई बोलियाँ खत्म हो गई हैं। भारत में बोलियाँ के साथ-साथ हिन्दी पर इसका प्रभाव पड़ा है। गुलाम मानसिकता आज के लोगों में घूम रही है। बाजारवाद साहित्य को निगल रहा हैं हमारी संस्कृति को हमारी गुलाम मानसिकता खत्म कर रही हैं।''

भारतीय राजनीति उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के सारे घुटने टेकने के यह सारे दुष्परिणाम हैं।

हिन्दी में अधिकतर पढ़ने वाले मनोरंजन के लिए पढ़ते हैं। उससे परिवर्तन नहीं होता। नये लेखकों को आगे बढ़ने के लिए अपेक्षितों के साथ सरोकार रखना चाहिए। पर वर्तमान में स्थिति उल्टी दिखाई दे रही है। लेखन अधिकतर उपेक्षितों की अपेक्षा शोषकों की पैरवी कर रहा है। वर्तमान समय में दूरदर्शन ओर सिनेमा ने हमारा समय छीना है। वह हमें अपनी ओर घसीट रहा है। बावजूद इसके, नये लड़के अच्छे लिख रहे हैं। कमोबेश मात्रा में प्रतिबद्धता पत्नी और बच्चों के लिए अधिक है। कुछ पत्रकारों और मेघा पाटकर जैसों के संघर्ष के कारण समाज में कुछ उजाला हैं। संजीव नये लेखकों को लेखन के संदर्भ में सचेत करते हुए कहते हैं- ''नये लेखकों को विरासत में इतना कुछ मिला हुआ है कि वे हमसे ज्यादा समृद्ध है। कई अच्छा लिख रहे हैं, कई लेखन के फैशन में रंग गए हैं। उन्हें न सिर्फ बेहतर लिखना चाहिए बल्कि उस लेखन को जन-जन तक पहुँचाने के विकल्प भी देने चाहिए।'' वे उद्देश्यपरक लेखन के हिमायती हैं और स्वयं इसी पथ के पथिक हैं और सहकर्मियों के लिए 'रोल मा◌ॅडल' बने हुए हैं। वे आगे कहते हैं। कथनी और करनी में साम्य रखें। लिखना मात्र पर्याप्त नहीं है बल्कि लेखन को अंजाम देने हेतु जन-आंदोलन के हिस्से भी बने।''

संजीव की यह दीवानगी ही है कि हर चीज स्वयं की मेहनत के बल पर हासिल करना चाहते हैं। दिखावे की अपेक्षा सादा जीवन उन्हें भाता है। शौक के नाम पर कभी बिना कत्थे वाला महोबा या मिठी पत्ती-पान, भोलाछाप या १२० न• का जर्दा या नंबर सुर्ती के साथ हुआ करता था अब वह भी छूट चुका है। कभी-कभार खैनी चल जाती है। पहले ही बताया गया कि संजीव मांसाहार, शराब से कोसों दूर है। पहले अधिकतर यात्राएँ रेल के जनरल डिब्बे से की है। वे कहते हैं जब सोना ही नहीं है, हर दूसरे तीसरे स्टेशन पर कोई-न-कोई मिलने आता है तो रिजर्वेशन क्यों करें। लद्धड़ ऐसे कि झूठा बोल नहीं सकते, मजाक में भी नहीं। हमेशा जल्दी में रहते हैं, जहाँ अभी पहुँचे भी नहीं होते, वहाँ से जाने की जल्दी मची रहती है।

''यह व्यक्ति मान-सम्मान से दूर ही रहना चाहता है। एक समारोह में मिला मानपत्र बरसात की झटास रोकने के लिए रोशनदान में अटका देता है। यह आदमी फुर्सत के समय या फुर्सत निकालकर किसी को अस्पताल पहुँचायेगा, किसी की अर्जियाँ लिखेगा या किसी बच्चे को दाखिला दिलवाना हो तो वहाँ चला जाएगा।'' वे किसी की मजबूरी का फायदा नहीं उठा सकते। धोखा देना तो इन्होंने सीखा ही नहीं। गैर कानूनी कोई भी काम संजीव को भाता नहीं। वे अपनी रचना को कई-कई बार लिखते हैं और कोई बात छूट जाने पर स्वयं पर ही भन्नाये रहते हैं।

इनसे किसी ने अपनी समस्या कहीं समझ लो, वह समस्या संजीव की हो गई। उस समस्या को लेकर वे स्वयं परेशान हो उठेंगे। वे गलतियां करने वाले व्यक्ति को भी सहज ढंग से माफ करते जाएंगे। अच्छे व्यक्तियों की इन्हें अक्सर आस रहती है। हाँ, पुस्तकों की कीमत अतिरिक्त बढ़ाने पर प्रकाशक से भी झगड़ने से इन्हें कोई नहीं रोक सकता।

संजीव का व्यक्तित्व निडर है। 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' कहानी में टी•टी• साहिबा, रेल के पुलिस और शरीफजादियों को कैसे चुप किया था। हर समय वे कमजोर था, अगर वह सच्चा है तो पक्ष लेते हैं सालों तक कंपनी में इनका प्रमोशन रूका था फिर भी वे किसी की खुशामद नहीं करते। संजीव काफी भावुक और संवेदनशील व्यक्ति हैं। भाइयों की मृत्यु के बाद जैसे उनकी खुशी लुप्त हो गई है। 'सूखी नदी के घाट पर' कहानी की समझदार स्त्री की याद आते ही वे भावुक हो उठते हैं।जो भी दमित, शोषित, पीड़ित हैं उनसे संजीव को लगाव है।

संजीव हिन्दी, अंग्रेजी के साथ-साथ बांग्ला भाषा के भी ज्ञाता हैं। हर समय इस व्यक्ति के चेहरे पर स्थितप्रज्ञ खुशी दिखेगी। आँखों में अपना बनाने का जादू है, स्वभाव चंचल है। मित्र सूरज और अन्य देशभक्तों के लिए साथ ही कुल्टी के उजड़े कारखाने और ग्राम के प्रति आज भी उनकी आँखें नम हो जाती हैं। संजीव को मित्र सूरज के लिए फूट-फूटकर रोते हुए देखा गया है। गौतम सान्याल कहते हैं- ''मैंने

संजीव को उन देशभक्तों के लिए फूट-फूटकर रोते हुए देखा है।'' सत्य स्वीकारने की उनकी खासियत है। वे डींगे नहीं हांक सकते इसलिए तो वे स्वयं की अपेक्षा मोर्चे पर लड़ने वाले सिपाही को श्रेष्ठ मानते हैं। प्रेमचंद के लिए अनमोल रतन शरीर की सबसे पवित्र खून की बूंद है जो देश के काम आए। उसी तरह संजीव के लिए हर तरह के शोषण और गैर-बराबरी को समाप्त करने वाली आखरी खून की बूंद सर्वश्रेष्ठ है।

संजीव स्वभाव से नास्तिक हैं। जब द्वन्द्व से संसार का निर्माण और विकास हुआ है तो भगवान क्या मायने रखते? संजीव को जनशक्ति में आस्था है। 'नक्सल' या क्रांतिकारियों को संजीव पसंद करते हैं जिसमें बदलाव की उन्हें आशा है पर उनके भटकाव पर खरी-खोटी भी सुनाते हैं। विज्ञान की शिक्षा ने इन्हें खोजी बनाया है। वे आज टूट भले ही गए हों पर हारे नहीं। इसलिए तो अपने लिखने का प्रश्न जिंदा रहने के साथ जोड़ते हैं।

२.२ संजीव का कृतित्व- कहानी संग्रह: प्रकाशन वर्ष

अ.क्र.	कहानी संग्रह	प्रकाशन वर्ष

१. तीस साल का सफरनामा दिशा प्रकाशन, दिल्ली १९८१

२. आप यहाँ हैं अक्षर प्रकाशन, दिल्ली १९८४

३. भूमिका और अन्य कहानियाँ पराग प्रकाशन, दिल्ली १९८७

४. दुनिया की सबसे हसीन औरत यात्री प्रकाशन, दिल्ली। १९९१

५. प्रेतमुक्ति दिशा प्रकाशन, दिल्ली १९९१

६. प्रेरणास्रोत और अन्य कहानियाँ किताबघर, दिल्ली १९९६

७. ब्लैक होल दिशा प्रकाशन, दिल्ली १९९७

८. डायन और अन्य कहानियाँ नैशनल लिटरेसी मिशन १९९८

९. खोज दिशा प्रकाशन, दिल्ली २०००

१०. गति का पहला सिद्धांत मेधा बुक्स २००४

११. गुफा का आदमी भारतीय ज्ञानपीठ २००६

१२. तीसरी नाक: भिड़न्त (किशोर साहित्य) रेमाधव प्रकाशन, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

१३. गली के मोड़ पर सूना-सा कोई दरवाजा अरू पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली २००८

१४. संजीव की कथा यात्रा-तीन खंड वाणी प्रकाशन २००८

१५. झूठी है तेतरी दादी वाणी प्रकाशन २०१३

१६. गैर इरादतन हत्या उर्फ मृत्यु पूर्व का इकबालिया बयान वाणी प्रकाशन २०१५

उपन्यास: प्रकाशन का वर्षः-

अ.क्र.	उपन्यास	प्रकाशन वर्ष

१. किसनगढ़ के अहेरी/यह उपन्यास पुनर्लेखन के बाद 'अहेर' के नाम से आया है।

मीनाक्षी पुस्तक मन्दिर, दिल्ली ज्योति पर्व प्रकाशन, इन्दिरपुरम गाजियाबाद २०१४

२. सर्कस अक्षर प्रकाशन, दिल्ली (अब राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली) १९८४

३. सावधान! नीचे आग है राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९८६

४. धार प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली १९९०

५.पॉव तले की दूब प्रणीण प्रकाशन, दिल्ली, अब बाग्देवी प्रकाशन, बिकानेर १९९५

६. जंगल जहाँ शुरू होता है राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली २०००

७. सूत्रधार राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली २००२

८. आकाश चम्पा रेमाधव पब्लिकेशन प्रा.लि. गाजियाबाद (उ•प्र•) २०११

९. रह गई दिशाएँ इसी पार राजकमल प्रकाशन, दिल्ली २०११

१०. फाँस वाणी प्रकाशन, दिल्ली २०१५

बाल साहित्य: प्रकाशन और वर्ष २४/संजीव के कथा-साहित्य में सर्वहारा समाज

अ.क्र. उपन्यास प्रकाशन वर्ष

१. रानी की सहाय रेमाधव पब्लिकेशन्स प्रा•लि• गाजियाबाद (उ•प्र•) २००९

नाटक और यात्रा वृतान्त: प्रकाशन

१.ऑपरेशन जोनाकी (नाटक) संबोधन पत्रिका में प्रकाशित संपादक कमर मेवाड़ी

२. सात समन्दर पर (यात्रा वृतान्त) प्रकाशधीन

पुरस्कार-

१. अपराध (प्रथम पुरस्कार) टाइम्स ऑफ इंडिया सारिका सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता, दिल्ली १९८०

२. कथा लेखन के लिए प्रथम कथाक्रम सम्मान लखनऊ १९९७

३. जंगल जहाँ शुरू होता है इंदू शर्मा अन्तर्राष्ट्रीय कथा सम्मान, लंदन २००१

४. प्रेमचंद सम्मान कोलकाता, आसनसोल, बांदा २००२

५. भिखारी ठाकुर लोक सम्मान कुतुबपुर, कोलकाता २००३

६. पहल सम्मान जबलपुर २००५

७. जनपद सम्मान सुल्तानपुर २००६

८. सुध स्मृति सम्मान भागलपुर, दिल्ली

२००८

९. प्रेमचंद सहाजबाला स्मृति सम्मान दिल्ली

२०१४

१०. श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको सम्मान दिल्ली

२०१४

११. साहित्य भूषण (उ•प्र•) लखनऊ

२०१६

विशेषः-

१. हिन्दी कहानी के सबसे बड़े सम्मान 'कथा वर्ष' की विशेष संगोष्ठी के अध्यक्ष।

२. आकाशवाणी की रांची इकाई की सलाहकार समिति के भू•पू• सदस्य।

३. अनेक संस्थाओं के सलाहकार सदस्य।

४. कुछ महीने हैदराबाद विश्वविद्यालय के विजिटिंग स्कॉलर।

५. नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया की सलाहकार समिति के भूतपूर्व सदस्य।

६. कई कथा-कहानियों का अंग्रेजी, हिंदी तथा हिन्दीतर भारतीय भाषाओं में अनुवाद के साथ-साथ मंचन।

७. कई विश्वविद्यालयों में कृतियों पर एम•फिल•, पी•एच•डी• का खोज कार्य संपन्न एवं कार्यरत। २०१६ तक यह संख्या ८० पार कर चुकी है।

८. कुछ महीने 'अक्षर पर्व' (रायपुर) के संपादक।

९. एक वर्ष एक रेमाधव प्रकाशन के संपादक।

१०. कई वर्कशाॅप, सेमिनार, संगोष्ठियों के मार्गदर्शक एवं अध्यक्ष।

११. २०११-१२ के एक वर्ष के लिए महात्मा गाँधी अन्तराष्ट्रीय हिंदी वि•वि• वर्धा के अतिथि लेखक

१२. न्यूज ट्रस्ट आफ इंडिया के सलाहकार सं.

फिल्मः-

१. 'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास के एक अंश पर 'काला हीरा' नाम से टेलीफिल्म।

२. 'हिमरेखा' कहानी प्रकाश झा प्रोडक्शन द्वारा फिल्म के लिए अनुबंधित

३. 'सूत्रधार' उपन्यास पर फिल्म का काम चल रहा है।

४. ’फुलवा का पुल’ कहानी पर जमीला बानों की कहानी ’कुएं की चोरी’ के साथ श्याम बेनेगल द्वारा प्रसिद्ध फीचर फिल्म ’बेल डन अब्बा’

सेवाः-

वर्ष १९६५ से २००३ सैंतीस वर्षों तक इस्को, कुलटी में रसायनशास्त्री रहने के बाद स्वैच्छिक सेवा अवकाश।

१. प्रमुख कथा मासिक ’हंस’ (नयी दिल्ली) के पाँच वर्षों तक कार्यकारी संपादक।

२. स्वतंत्र लेखन।

२.३ संजीव की उपन्यास दृष्टि का विकास

समकालीन समय में हिन्दी साहित्य और रचनाकारों के दृष्टिकोण में वैचारिक और यथार्थ के धरातल पर हुए कई सारे परिवर्तन दिखाई देते हैं। यह वह दौर है जिसमें हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में दलित और स्त्रीवादी चिंतन-विमर्श के सशक्त अध्याय जुड़ गए। समकालीन उपन्यास लेखन इन विमर्शात्मक प्रवाहों से अछूता नहीं ़रहा है। इन्हीं के

समानांतर आदिवासी जनजातीय विमर्श भी फलता-फूलता रहा है। जनजातियों की दूसरी श्रेणी में आने वाली खानबदोश जातियाँ भी कथा-सृजन के दायरे को तोड़ते हुए लेखन के केन्द्र में आती गई है। इन जनजातियों के आर्थिक और राजनैतिक मुद्दे नये-नये विजन को लेकर उपन्यासों में प्रस्तुत होते रहे हैं। समकालीन उपन्यास साहित्य में लेखन के अलग-अलग प्रवाहों के मद्देनजर जनजातिमूलक उपन्यास लेखन का बहुआयामी परिदृश्य उभरता है। इसी सन्दर्भ में विद्याभूषण का यह मंतव्य उचित है कि ''सन् अस्सी के बाद ही हिन्दी कथा कृतियों में वर्णित सामाजिक यथार्थ इस बात की तस्दीक करता है कि राजनीतिक बेचैनी आदिवासी अस्मिता का पर्याय बन गयी है। आज जनजातियों को केन्द्र में रखकर रचा जा रहा कथा-साहित्य पुरातन परम्पराओं और सांस्कृतिक अवशेषों का संग्रहालय बनकर कतई संतुष्ट नहीं है। इनसे पहले (सन् अस्सी) हिन्दी जनजातीय उपन्यासों, वरास्ता आंचलिक कथा यात्रा, के पिछले तीन दशकों का परिदृश्य एक कोलाँज का निर्माण ही कर सका था वह ऐसे कोलाँज का जिसमें तेजी से बदल रहे दृश्य पटल पर दिशाहीन कोहरा बिछा हुआ था। उनके माध्यम से जनजातियों के आँसू और पसीने, बसंत और सुखार्ड पुरब और त्यौहार के मौसम और मिजाज के कई-कई रंगों या छवियों से कथित सभ्य समाज परिचित हो सकता है। किन्तु मार्फत आदिवासी जीवन के परम्परागत मूल्यों और माध्यमों को बीमारी सदी के इतिहास की मुठभेड़ का इतिवृत्त नहीं सुलभ होता।'' अतः नब्बे

का दशक आरम्भ होने के बाद अपने समकालीन समय में जनजातियों के समग्र जीवन -यथार्थ की प्रस्तुति हिन्दी उपन्यासकारों द्वारा शिद्दत से की गई है।

उपन्यासकारों के समय के लिए इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक तक संथाल, थारू, उराँव, गोंड, मिजो, भील तथा आसुर आदि जनजातियों को केन्द्र में रखकर कई सारे उपन्यास लिखे गए हैं। इन जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीकि, और ऐतिहासिक सवालों को लेकर संजीव, विनोद कुमार, राकेश कुमार सिंह, भालचँन्द्र आदि का उपन्यास लेखन उल्लेखनीय रहा है।

समकालीन समय के शीर्षस्थ रचनाकारों में कथाकार एवं उपन्यासकार संजीव हस्ताक्षर हैं। संजीव का उपन्यास सर्जन आजादी के बाद बदलती रही आर्थिक राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में आदिवासी समाज पर हुए प्रभावों की उजागर करता, 'संजीव का लेखन महज मनोंरजन का साधन नहीं रहा है। वह पात्र, परिस्थितियों, काल और उसके कारण शक्तियों के द्वन्द्व और संवेदना से पुष्ट होता रहा है। जनजातिय समाज के अन्तरंग और बहिर्गत जीवन का पक्ष उजागर करता है।'' संजीव के 'सावधान नीचे आग है' (१९८६), 'पाँव तले की दूब' (१९९५) और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (२०००), आदिवासी जीवन पर केन्द्रित महत्वपूर्ण उपन्यास है। 'सावधान नीचे आग है' उपन्यास के

केन्द्र में तत्कालीन बिहार और वर्तमान झारखंड के कोयलांचल में निवास करती संथाल जनजाति है। यह संथाल जनजाति औद्योगिक विकास के कारण प्रभावित होकर विस्थापन का दर्द झेलने को मजबूर हुई है। उपन्यास की कथा में कोयला खदानों में होने वाली दुर्घटनाओं और उससे मजदूरों में परिवर्तित हुए आदिवासियों का यथार्थ वर्णन हैं। इसी के तहत जनजातियों के आर्थिक और राजनीतिक मुद्दे मुखर होते हैं। संथाल लोग कोयला खदानों की आग में झुलसकर बार-बार आन्दोलित होते हैं। परन्तु उनके जनवादी आन्दोलनों को बड़ी चालाकी से दबा दिया जाता है। आदिवासियों की लोक-संस्कृति और श्रम संस्कृति के आर्थिक-सामाजिक टकरावों का समग्र चित्र प्रस्तुत उपन्यास में मौजूद हैं।

संजीव का सन् १९९० में प्रकाशित 'धार' उपन्यास की कथावस्तु में एक संथाल स्त्री मैना के संघर्ष और अस्तितामूलक चेतना को बयान किया गया है। इसकी कथाभूमि में बिहार का बांसगड़ा अंचल है। जिसका विकास की परिक्रमा में चित्र ही बदल गया है। उसके बदले चित्र का जिक्र है, ''इस अंचल में झोपड़े का सिलसिला फैक्टरी की ओर ऐसे खिंचता चला गया है, जैसे आग की लौ के पास पतंगे और झुलसकर फिर जहाँ-तहाँ छितरा गया है। यहाँ की छटपटाती बस्ती को गोड़ा जाने वाली सड़क के वाहनों की घबराहट रात-दिन खरोंचती रहती है और दूसरी ओर से बगल से गुजरने वाली लाईन की रेलगाड़ियाँ जब-तब सटकारा

करती है। मगर बांसगड़ा सचमुच का बांसगड़ा है, उठकर भागता भी नहीं, यहीं पड़े मौत का इंतजार करता रहता है।'' इस परिवेश में संथाल जनजाति सभ्य समाज के पूँजीपतियों, ठेकेदारों और पुलिसकर्मियों द्वारा शोषित होती है। संथालों के होने वाले शोषण से मुक्ति की चाहत लेकर मैना जन आन्दोलन खड़ा करती है। वह कोयलांचल में निजी कम्पनियों के प्रतिपक्ष में जन खदानों का विकल्प पेश करती है। इसी दौरान उसे अपने घर-परिवार और समाज से भी बहिष्कृत किया जाता है। संथालों की जाति-पंचायत, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और बाहरी पूंजीपतियों के दबाव में मैना को कई अन्तर्विरोधों को सहना पड़ता है। फिर भी यह जीवन आदिवासी नारी का अपना व्यक्तित्व खत्म नहीं होने देती है। मैना के समूचे अस्मितावादी पहलुओं का संजीव ने जनवादी एवं मानवीय दृष्टिकोण से अंकन किया है। यह चित्रण अकेली मैना का नहीं है बल्कि जन आन्दोलनों में संघर्षरत भारतीय आदिवासी नारी की आकांक्षाओं, शोषण तथा उत्पीड़न की व्यवस्थाओं और अस्मिताओं का दस्तावेज भी है। संजीव के 'पॉव तले की दूब' उपन्यास में भी संथाल जनजाति को केन्द्रीयता प्राप्त हुई है। इसमें नक्सलवादी आन्दोलन के दौरान भूमिगत हुए एक कार्यकर्ता की कहानी के माध्यम से संथाल परगना के आदिवासियों की गतिविधियों और सामाजिक-आर्थिक संघर्षो को उजागर किया गया है। यह उपन्यास एक तरह से संजीव के उपन्यास सर्जन के सूत्री और अनुभव यात्रा का परिचायक रहा है।

सन् २००० में प्रकाशित संजीव का ही एक महत्वपूर्ण उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' थारू आदिवासियों के जीवन संघर्ष और सामाजिक आर्थिक यथार्थ को उजागर करता है। यह रचना भी लेखक की खोजी प्रवृत्ति का परिणाम रही है। बतौर लेखक, 'मेरी हर रचना तब भी शोध थी, आज भी है, चाहे वह तब का 'सर्कस' उपन्यास हो या कोई कहानी या इधर के उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' और 'सूत्रधार'।'' इस उपन्यास में भले ही ऊपर से बीहड़ के डाकुओं की समस्या नजर आती है, लेकिन इसका पूरा परिवेश और अन्तरंग सूत्र बिहार के चंपारण जिले के थारू आदिवासियों को केन्द्रीभूत करता है। वीरेन्द्र यादव के मतानुसार, 'सच तो यह है कि जंगल जहाँ शुरू होता है उपन्यास में डाकू समस्या के बहाने हाशिए के उस जीवन को विश्लेषित किया गया है जिसे अपराध की भूमि व शरणस्थली के रूप में चिन्हित कर 'सभ्य' समाज के अन्य की 'शत्रु' छवि में छला जाता है।'' स्पष्ट है कि तथाकथित सभ्य समाज के राजनेता और पूंजीपति आदिवासियों की आर्थिक-सामाजिक मजबूरियों का फायदा उठाकर उन्हें डाकू या नक्सली बनने को मजबूर करते हैं। जब वे डाकू या नक्सली बनते हैं तो उनके खिलाफ कार्यवाही करने में भी राजनेता ही सक्रीय रहते हैं। यहाँ तक की डाकू जीवन से मुक्ति दिलाने का लालच देकर आदिवासी महिलाओं का शारीरिक शोषण भी किया जाता है। थारू आदिवासियों के साथ इसी तरह का व्यवहार हुआ है। इस उपन्यास में राजनेता मुरली पांडे और दूबे के

जरिये प्रस्तुत किया गया है। थारू आदिवासी बिसराम, काली तथा अहीर जाति का परेमा के डाकू बनने के बारे में लल्लन बाबे एक जगह ए•सी•पी• कुमार से कहते हैं, ''अगर ई सोच के आइएगा कि हम टरेनिंग देते हैं डकैती का तो झगड़ा हो जाएगा। बेटा, टरेनिंग तो ई पाॅलिटिक्स देती है, तुमरे दुबेजी जैसे लोग, उनका ई समाज देता है।''

२.४ हिन्दी में आदिवासी उपन्यास: रूपरेखा

आदिवासी जीवन को केन्द्रीय विषय बनाकर स्वाधीनतापूर्ण काल में उपन्यासों का अभाव नजर आता है। यह निश्चय ही स्वीकरणीय है कि आदिवासियों तथा जनजातियों को लेकर उपन्यासों का लेखन स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद ही हुआ है। साहित्य जगत् में जिस तरह समकालीन उपन्यासकारों ने सर्वहारा वर्ग को केंद्रीय विषय के रूप में चित्रित करना शुरू किया उसी तरह आदिवासी लोगों के जीवन पर अभिलेखन शुरू किया। आदिवासी-विमर्श वर्तमान काल की अत्यंत संवेदना के साथ अभिव्यक्ति मिली है। विगत दो-तीन दशकों में आदिवासियों का जीवन हिंदी उपन्यासों में अत्यंत यथार्थता के साथ चित्रित हुआ है। स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद विकास के अलग-अलग अभियान शुरू हुए और देश के विभिन्न वर्गो के लोग इससे लाभान्वित हुए लेकिन यह सच है कि सबसे अधिक उपेक्षित रूप में आदिवासी ही

रहे। यह वही समाज है जो यहाँ का मूल निवासी है लेकिन उनका निवास स्थान जंगलों, पहाड़ों तथा दुर्गम भागों में होने के कारण विकास की शायद ही कोई योजना उन तक पहुँची है। अज्ञान और अशिक्षा का साम्राज्य इस देश में सबसे अधिक आदिवासी समाज में ही फैला हुआ है। शासकीय स्तरों पर योजनाएँ तो बनती रही लेकिन आदिवासी समाज का बहुत बड़ा हिस्सा इससे वंचित ही रहा। शासक चुप बैठता हो तो बैठे लेकिन संवेदनशील रचनाकार कैसे चुप बैठता है ? समकालीन हिंदी उपन्यासकार निश्चय ही सजग है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श को केन्द्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों की भरमार है। शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष', संजीव का 'जंगल जहाँ शुरू होता है' तथा 'धार', राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', 'जाने कितनी आँखे', 'सूरज किरण छाँव', मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी', राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास हिमांशु जोशी का 'कगार की आग', मृणाल पांडे का 'देवी' और चंद्रकांता का 'कथा सतीसर' जैसे कई उपन्यास उल्लेखनीय हैं जो आदिवासी जीवन को विमर्श का विषय बनाते हैं। इसमें आदिवासियों के आचार, विचार, व्यवहार और अभावग्रस्त जीवन को वैचारिकता के साथ अभिव्यक्ति मिली है। प्रायः ये सभी रचनाकार आदिवासियों के जीवन-विकास के लिए चिंतित है। अतः उनके उन्नयन की पहल करते हैं।

शिक्षा का प्रसार और जन-संचार के साधनों की वृद्धि के कारण भारतीय सामाजिक माहौल बदलता जा रहा है इसमें दो राय नहीं। आधुनिक माहौल के परिणामस्वरूप आदिवासियों में भी चेतना, स्वाभिमान एवं साहस दिखाई देने लगा है। शिव प्रसाद सिंह के 'शैलूष' उपन्यास की स्त्रीरूपा में यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। अखबार खरीदने के लिए गई रूपा की उपेक्षा अखबार बेचने वाला लड़का करता है तब वह उसे बड़े साहस से सुनाती है।

''मारकर तोड़ दूँगी तेरा हाथ रूसाला तू क्या समझता है कि नट नटुल्ली जिंदगी भर अनपढ़ और अँधेरे में ही सड़ते रहेंगे ? क्या उनकी जिंदगानी में कभी रोशनी आएगी ही नहीं ?'' आदिवासी स्त्री रूपा के इस कथन से आदिवासियों में शिखा के प्रति बढ़ रही आस्था का और अपनी उपेक्षा के कारण विकसित हो रही चेतना का परिचय मिलता है।

वस्तुतः आदिवासी समाज यहाँ का मूल निवासी है और मूल मालिक भी। जिस जंगल, पहाड़ या दुर्गम प्रदेश में वह रहता है, वहाँ का मालिक, वह स्वयं है। लेकिन स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद यहाँ की सामाजिक और प्रशासकीय व्यवस्था ने अनपढ़ और अशिक्षित होने के कारण दलितों की तरह आदिवासियों का भी शोषण खूब किया। आदिवासियों के शोषण के रूप में सत्ताधारी, ठेकेदार, माफिया और दलाल भी दिखाई देते हैं। यहाँ तक की काॅमरेड नेता भी आदिवासियों के

शोषण में पीछे नहीं रहते। किसी में भी आदिवासियों के प्रति हमदर्दी या प्रतिबद्धता नजर नहीं आती। संजीव के 'धार' उपन्यास में इसका यथार्थ चित्रण दिखाई देता है। आदिवासी मजदूर नेता शर्मा जी कॉमरेड से आदिवासी मजदूरों के शोषण के बारे में दो टूक बातें करते हैं- ''सुनियेकॉमोड! आप कहते हो कि ठेकेदार, माफिया जोतदार और दलाल आदिवासियों का शोषण करते हैं वे करेंगे ही। वह तो उनका वर्ग चरित्र है। लेकिन मैं पूछता हूँ, आपके पास भी इसका कोई जवाब हैं। आपका कोई चरित्र है या नही ? कोई विकल्प नहीं ?'' स्पष्ट है कि आदिवासी समाज के शोषण में किसी ने भी कसर नहीं छोड़ी। सबके सब शोषक के रूप में नजर आते हैं।

आदिवासी जीवन का एक सच यह है कि इस समाज से चोरी करना तथा भीख माँगना नहीं होता। यह अपनी इज्जत को भी नहीं बेचता। लेकिन अब इस समाज में यह सब कुछ होता हुआ दिखाई दे रहा है। असल में आदिवासी समाज में यह सब कुछ होता हुआ दिखाई दे रहा है। असल में आदिवासी समाज की हालत पहले से भी बुरी दिखाई देती है। संजीव के 'धार' उपन्यास में इसका चित्रण मिलता है। इस उपन्यास के संथाल आदिवासी गरीबी तथा बेकारी में जीवन बिताते हैं। उद्योगपति महेन्द्रबाबू आदिवासी इलाके में तेजाब का कारखाना शुरू करते हैं। तेजाब के पानी से आदिवासियों के कुएँ, तालाब दूषित होते हैं। अतः

आदिवासियों को नई समस्याओं से जूझने के लिए सब कुछ करना पड़ रहा है। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका मैना अपने समाज की हालत को बयाँ करती है - ''खेत-खतार, पेड़, रूख, कुआँ, तालाब, हम और हमारा बाल-बच्चा तक आज तेजाब में गल रहा है, भूख में जल रहा है। पहले हम चोरी का चीज है नहीं जानता था, भीख कभी नई माँगी,.....इज्जत कभी नई बेजा, आज हम सब करता।'' मैना के माध्यम से उपन्यासकार संजीव ने वर्तमान कालीन आदिवासियों के जीवन का कड़वा सच प्रस्तुत किया है कि यहाँ का मूल निवासी, आदिवासी ही आज सबसे अधिक बेबस जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।

यह सही है कि आदिवासी समाज शोषित है और इसके शोषण विभिन्न है। लेकिन ऐसा नहीं कि आदिवासी लोग मौन मूक रहते हैं। आदिवासियों में भी आज चेतना विकसित हो रही है। संगठन शक्ति का महत्व उन्होंने भी पहचाना है। अतः यहाँ वे अन्याय और अत्याचार देखते हैं वहाँ विद्रोह तथा क्रांति का साहस भी करने लगे हैं। संजीव के 'धार' उपन्यास में यही स्थिति अंकित है। इस उपन्यास के अविनाश शर्मा तथा मैना जनखदान में आदिवासियों के साथ काम करते हैं। इस खदान में कोयला मिलता है। लेकिन शोषण का सिलसिला यहाँ बरकरार है। इसलिए अपने आदिवासी साथियों से अविनाश शर्मा अपनी संगठन शक्ति का अहसास दिलाते हैं- ''तो साथियों, यह धार ही हमारी शक्ति है

और धार का भोथरा होना ही मौत.....धार बरकरार रही हो सारा संसार ही आपका है।.....इसलिए हमें धार की जरूरत है, सतत सान से ताजा होती धार चाहिए हमें, कोई भी कुर्बानी क्यों न देनी पड़े।'' स्पष्ट है कि आदिवासी भले ही शोषित हो लेकिन उनमें संगठन शक्ति की ओर चेतना की प्रवृत्ति विकसित होती जा रही है। आदिवासियों की यह संगठन शक्ति ही तलवार की धार की तरह है जो उनके अन्याय और अत्याचार के निवारण के लिए आवश्यक ही नही तो अनिवार्य भी बतलाई गई है। 'धार' उपन्यास का यह विमर्श आदिवासी-विमर्श का एक समृद्ध पहलू मानना होगा।

आदिवासी-विमर्श की दृष्टि से समकालीन हिंदी उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष सामने आता है कि इस विषय पर हिंदी में उपन्यासों की भरमार हैं। यह विषय एक स्वतंत्र शोध की माँग करता है। आदिवासी जीवन चिंतन जिन उपन्यासों में केंद्रीय विषय के रूप में आया है, उनमें आदिवासियों को प्रायः शोषित, पीड़ित तथा त्रस्त रूप में ही अंकित किया गया है। यह वह समाज है जो सबसे अधिक वंचित, उपेक्षित और अभावग्रस्त जीवन जी रहा है। योजनाओं का लाभ आदिवासियों को प्रायः मिल ही नही पाता। आधुनिक माहौल के परिणामस्वरूप आदिवासियों में चेतना का विकास दिखाई दे रहा है। अब आदिवासियों में भी संगठन शक्ति की तथा क्रांति की भावना पनपती जा

रही है। अन्याय के विरोध में विद्रोह करने का साहस विकसित होता जा रहा है। समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने आदिवासी जीवन का चित्रण अत्यंत संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है।

वर्तमान समय और समाज में दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श जितनी तेजी से अपनी चेतना के स्वर को मुखरित कर रहे हैं, लगभग उसी रूप में आदिवासी विमर्श भी अपनी पहचान बनाने का प्रयास कर रहा है। आदिवासी साहित्य प्रायः सभी साहित्यिक विधाओं में अपनी पहचान बना रहा है। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत कई आदिवासी उपन्यास लिखे गये हैं परन्तु स्वतंत्रता के बाद ही इसकी संख्या में वृद्धि आयी है। हिन्दी साहित्य के कुछ आदिवासी उपन्यास इस प्रकार हैं-

उपन्यास में चित्रित प्रमुख आदिवासी जनजातियों के आधार पर संथाल जनजाति पर केन्द्रीत उपन्यास

उपन्यास - उपन्यासकार

वन विहंगिनी - राजचीज सिंह

मैला आंचल - फणीश्वर नाथ रेणु

जंगल के आस-पास- राकेश वत्स

सावधान नीचे आग है - संजीव

समर शेष है - विनोद कुमार

धार - संजीव

पॉव तले की दूब - संजीव

जो इतिहास में नही है - राकेश कुमार सिंह

गाथा भोगनपुरी - किशोर कुमार सिन्हा

गौंड आदिवासी जनजाति पर केन्द्रित उपन्यास -

उपन्यास	-	उपन्यासकार
कचनार	-	वृंदावन लाल वर्मा
रथ के पहिए	-	देवेन्द्र सत्यार्थी
सूरज किरण की छांव	-	राजेन्द्र अवस्थी
जंगल के फूल	-	राजेन्द्र अवस्थी
जाने कितनी आंखे	-	राजेन्द्र अवस्थी
सांप और सीढ़ी	-	गुलशेर खाँ शानी
नदी और सीपियां	-	गुलशेर खाँ शानी
शालवनों का द्वीप	-	गुलशेर खाँ शानी

भील आदिवासी जनजाति पर केन्द्रित उपन्यास

उपन्यास		उपन्यासकार
मोरझाल	-	श्याम परमार
कुराॅटी	-	डाॅ॰ सतीश दुबे
दामोदर सदन	-	नदी के मोड पर
धूणी तपे तीर	-	हरिराम मीणा

आदिवासी जनजाति पर केन्द्रित उपन्यास

उपन्यास		उपन्यासकार
वनलक्ष्मी	-	योगेन्द्रनाथ सिन्हा
वन के मन में	-	योगेन्द्रनाथ सिन्हा
वनपाखी	-	गुरुवचन सिंह
तमाम जंगल-		कान्ह जी तोमर

कोली आदिवासी - जनजाति/मछुआरों के जीवन पर केन्द्रित उपन्यास

उपन्यास		उपन्यासकार
सागर लहरें और मनुष्य	-	उदयशंकर भट्ट

वरूण के बेटे - नागार्जुन

सागर की गलियाँ - डाॅ॰ एन॰ रामन नायर

मुण्डा आदिवासी - जनजाति पर केन्द्रित उपन्यास

उपन्यास उपन्यासकार

वनतरी - सुरेश चंद्र श्रीवास्तव

मौन घाटी - पीटर पाल एक्का

जंगल के गीत - पीटर पाल एक्का

पलास के फूल - संतोष प्रितम

उरांव आदिवासी - जनजाति पर केन्द्रित उपन्यास

उपन्यास उपन्यासकार

गगन घटा गहरानी - मनमोहन पाठक

चलता पिटारा - रामदीन पाण्डेय

सांवला पानी - भालचंद्र ओझा

खानाबदोश या घुमन्तू आदिवासी - जनजातियों पर केन्द्रित उपन्यास

उपन्यास उपन्यासकार केन्द्रीय जनजाति

पिंजरे में पन्ना - मणि मधुकर गाड़िया लुहार

कब तक पुकारूँ - रांगेय राघव करनट

धरती मेरा घर - रांगेव राघव करनट

शैलूष - शिव प्रसाद सिंह नट

अल्मा कबूतरी - मैत्रेयी पुष्पा कबूतरा

रेत - भगवान दास मोरवाल कंजर

अन्य आदिवासी - जनजातियों पर केन्द्रित उपन्यास

उपन्यास उपन्यासकार केन्द्रीय जनजाति

कोहरे में खोए चांदी के पहाड - जयप्रकाश भारती जोनसार

राका की मंजिल - बलवंत सिंह जुलु

धर्मपुत्री सोमा - राजीव सक्सेना पाणि जाति

कगार की आग - हिमांशु जोशी लुहार

रक्त यात्रा - कृष्णचन्द्र शर्मा'भिक्खु' नागा

पिंजरे में पन्ना - मणि मधुकर गाड़िया लुहार

सपनों वाली वह दुबली लड़की - शंकर लाल मीणामीणा

महर ठाकुरों का गाँव। - बटरोही महर ठाकुर

महासागर - हिमांशु जोशी। निकोबारी

जहां बांस फूलते हैं - श्री प्रकाश मिश्र मिजो

रूप तिल्ली की कथा। - श्री प्रकाश मिश्र खासी

काला पहाड़ - भगवानदास मोरवाल मेवात मुस्लिम

जंगल जहाँ शुरू होता है - संजीव थारू

ग्लोबल गाँव के देवता - रणेन्द्र असुर

सहराना - पुन्नी सिंह सहरिया

हुल पहाड़िया - राकेश कुमार सिंह पहाड़िया

आंचलिकता के परिप्रेक्ष्य में चित्रित आदिवासी जीवन के आधार पर

उपन्यास उपन्यासकार

रामलाल - मन्नन द्विवेदी गजपुरी

रथ के पहिए - देवेन्द्र सत्यार्थी

मैला आंचल - फणीश्वरनाथ रेणु

ब्रह्मपुत्र - देवेन्द्र सत्यार्थी

सागर लहरें और मनुष्य- उदयशंकर भट्ट

वनलक्ष्मी - योगेन्द्रनाथ सिन्हा

वरूण के बेटे - नागार्जुन

वन के फूल - करूबिमबरनो साहू

वन के मन में - योगेन्द्रनाथ सिन्हा

जंगल के आस-पास - राकेश वत्स

महर ठाकुरों का गाँव - बटरोही

शैलूष - शिवप्रसाद सिंह

सावधान नीचे आग है - संजीव

धार - संजीव

दूब - वीरेन्द्र जैन

पार - वीरेन्द्र जैन

धपेल - श्याम बिहारी श्यामल

जहां खिले हैं रक्तपलाश- राकेश कुमार सिंह

पठार पर कोहरा - राकेश कुमार सिंह

गाथा भोगनपुरी - किशोर कुमार सिन्हा

पहाड़ी आदिवासी जीवन के आधार पर

उपन्यास	उपन्यासकार	पहाड़ी परिवेश
अरण्यवाला	ब्रजनंदन सहाय	विध्यांचल का पहाड़ी क्षेत्र
नेपाल की बेटी	बलभद्र ठाकुर	पश्चिम नेपाल का पहाड़ी इलाका
कगार की आग	हिमांशु जोशी	पर्वतीय आदिवासी क्षेत्र
कोहरे में खोए चांदी के पहाड़	जयप्रकाश भारती	जोनसार बाबर और रंवाई का पहाड़ी क्षेत्र
महर ठाकुरों का गाँव	बटरोही	अल्मोड़ा जिले का पहाड़ी क्षेत्र

हवलदार शैलेश मटियानी कुमाँयू का पर्वतीय परिवेश

काला पहाड़ भगवान दास मोरवाल पहाड़ी दोआबा क्षेत्र

रेत भगवानदास मोरवाल गाजूनी गाँव का परिवेश

धूणी तपे तीर हरिराम मीणा मानगढ़ पहाड़ी क्षेत्र

रचनात्मक दृष्टिकोण, लेखन की प्रवृत्ति और शैली के आधार पर

रचनात्मक दृष्टिकोण	**लेखन प्रवृत्ति और शैली**	**उपन्यास**	**उपन्यासकार**
आदिवासी संस्कृति और सामाजिक जीवन पर लिखित उपन्यास	लेखन प्रवृत्ति- सामाजिक सुधार की भावना, सांस्कृतिक जीवन का चित्रण	रथ के पहिए मोरझाल ब्रह्मपुत्र वनलक्ष्मी	देवेन्द्र सत्यार्थी श्याम परमार देवेन्द्र सत्यार्थी योगेन्द्र नाथ

	लेखन शैली- सर्वेक्षण आधारित वर्णनात्मक शैली, बहुतांश लेखकों द्वारा सतही चित्रण	जाने कितनी आँखें सांप और सीढ़ी नदी और सीपियाँ शाल वनों का दीप कंगार की आग पिंजरे में पन्ना जंगल के आस-पास वनतरी मौन घाटी वनपाखी तमाम जंगल नदी के मोड़	सिन्हा राजेन्द्र अवस्थी गुलशेर खां शानी गुलशेर खां शानी गुलशेर खां शानी हिमांशु जोशी मणि मधुकर राकेश वत्स सुरेशचंद्र श्रीवास्तव पीटर पाल एक्का गुरूवचन सिंह

आदिवासियों के प्रेम संबंधों पर लिखित उपन्यास आदिवासियों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और संघर्ष की	लेखन प्रवृत्ति- सामाजिक, पारिवारिक और युवाओं के प्रेम संबंधों का चित्रण लेखन शैली- संवादात्मक, वर्णनात्मक, फंतासी और पूर्व दीप्त शैली के द्वारा चित्रण	पर कचनार वन के मन में सूरज किरण की छाँव जंगल के फूल सागर लहरें और मनुष्य कोहरे में खोए चाँदी के पहाड़ पिंजरे में पन्ना सपनों वाली वह दुबली लड़की	कान्ह जी तोमर दामोदर सदन वृंदावनलाल वर्मा योगेन्द्रनाथ सिन्हा राजेन्द्र अवस्थी राजेन्द्र अवस्थी उदयशंकर भट्ट जयप्रकाश भारती मणि मधुकर शंकर लाल

स्थितियों पर लिखित उपन्यास आदिवासियों के आर्थिक शोषण और राजनीतिक प्रश्नों पर लिखित उपन्यास	लेखन की प्रवृत्ति- आदिवासी इतिहास बोध, संघर्षशील पहलुओं का यथार्थ चित्रण, इतिहास का पुनर्मूल्यांकन लेखन शैली- संवादात्मकता, अन्वेषण परक सर्वेक्षण वर्णनात्मक एवं	जंगल के फूल रथयात्रा गाथा भोगनपुरी जंगल के गीत जहाँ बाँस फूलते है रूप तिल्ली की कथा जो इतिहास में नहीं है धूणी तपे तीर हुल पहाड़िया	मीणा राजेन्द्र अवस्थी कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्खु' किशोर कुमार सिन्हा पीटर पाल एक्का श्री प्रकाश मिश्र श्री प्रकाश मिश्र

आदिवासी समाज का अध्ययन करके सांस्कृतिक आध्यात्मिक पहलुओं पर लिखित उपन्यास	व्यंग्यात्मक शैली लेखन की प्रवृत्ति- मार्क्सवादी और समाजवादी दृष्टिकोण से सामाजिक यथार्थ का चित्रण, जनवादी चेतना, मुख्यधारा, सभ्य समाज और आदिवासी समाज के अन्तर्विरोधों का अंकन लेखन शैली-	कब तक पुकारूं वरूण के बेटे शैलूष सावधान! नीचे आग है धार पॉव तले की दूब जंगल जहाँ शुरू होता है समर शेष है गगन घटा गहरानी अल्मा कबूतरी रेत	राकेश कुमार सिंह हरिराम मीणा राकेश कुमार सिंह रांगेय राघव नागार्जन शिव प्रसाद सिंह संजीव संजीव संजीव संजीव

आदिवासी विमर्श का परिदृश्य निर्मित करने वाले उपन्यास	संवादात्मकता, प्रश्नांकित करने वाली वर्णनात्मक एवं व्यंग्यात्मक शैली लेखन की प्रवृत्ति- सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण	ग्लोबल गाँव के देवता सावधान! नीचे आग है धार जहाँ बाँस फूलते है रूप तिल्ली की कथा अल्मा कबूतरी रेत सहराना	विनोद कुमार मनमोहन पाठक मैत्रेयी पुष्पा भगवानदास मोरवाल रणेंद्र संजीव संजीव श्री प्रकाश मिश्र श्री प्रकाश मिश्र मैत्रेयी पुष्पा भगवान दास

	लेखन शैली- संवादात्मकता, प्रश्नांकित करने वाली वर्णनात्मक एवं व्यंग्यात्मक शैली लेखन प्रवृत्ति- जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन यथार्थ का चित्रण, भूमंडलीकरण के दबाव और जनजातीय व्यथाओं का अंकन, अस्तित्व	समर शेष है सावधान! नीचे आग है धार अल्मा कबूतरी ग्लोबल गाँव के देवता जो इतिहास में नहीं हुल पहाडिया धूणी तपे तीर गायब होता देश।	मोरवाल पुन्नी सिंह विनोद कुमार संजीव संजीव मैत्रीयी पुष्पा रणेन्द्र राकेश कुमार सिंह राकेश कुमार सिंह हरिराम मीणा

	और अस्मिता की चेतना लेखन शैली- संवादात्मकता, प्रश्नांकित करने वाली वर्णनात्मक एवं व्यंग्यात्मक शैली		रणेन्द्र

आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में कुछ उपन्यासों का परिचयात्मक विवेचन इस प्रकार है-

तेजिन्दर कृत 'काला पादरी' उपन्यास मध्य प्रदेश के गहन आदिवासी क्षेत्रों में घटित घटनाओं और जंगलों के आस-पास के जीवन का विवरणात्मक, संवेदनशील और सूक्ष्मता से वर्णित उपन्यास है। यह उपन्यास यथार्थ पर आधारित है। इस उपन्यास में आदिवासियों की दयनीय स्थिति को अत्यन्त यथार्थ व जीवन्त रूप में प्रस्तुत करने में उपन्यासकार सफल हुए है। भूख से तड़पते आदिवासियों की स्थिति

को 'काला पादरी' उपन्यास में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, ''साहब रात में बच्चा मर गया। उसकी माँ ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी माँ भी मर गयी। उसने भी कई दिनों से कुछ नहीं खाया था..... आदिवासी पिछले कई दिनों से जहरीली जंगली बूटियाँ खा रहे है और जिले के भीतरी इलाकों में तो कुछ लोग अपनी भूख मिटाने के लिए बिल्लियों और बन्दरों का शिकार कर, उनका मांस तक खा रहे हैं।''

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा जी ने बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बसने वाली कबूतरी जाति के मार्मिक रूप को उपस्थित किया है। यहाँ उपन्यासकार ने कबूतरी जाति के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण किया है।

भगवानदास मोरवाल के 'रेत' उपन्यास में 'कंजर' जनजाति के जीवन को उपन्यास का विषय बनाकर मार्मिक रूप में चित्रण किया गया है। कंजर यानी काननचार, अभीत जंगल में घूमने वाला। यह प्राचीन भारत की सबसे प्रमुख खानाबदोश जाति है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने सम्पूर्ण कंजर जातियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को जीवन्त रूप देने का प्रयास किया गया है।

रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण परिवेश को अपने साथ लेकर चलता हुआ यथार्थ पर निर्भर उपन्यास है।

किशोर कुमार सिन्हा द्वारा रचित 'गाथा भोगनपुरी' में उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड के आदिवासियों की बस्ती को उपन्यासकार ने अत्यंत जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया हैं।

राकेश कुमार सिंह कृत उपन्यास 'पठार पर कोहरा' में झारखण्ड में रहने वाली जनजातियों के शोषण की करूण कथा है। यहाँ अंग्रेजों ने झारखण्ड के मूल निवासियों के 'जल-जंगल-जमीन' के पारम्परिक अधिकारों को छीन लिया था। आजादी के वर्षों बाद भी आदिवासियों की समस्याओं और प्रश्नों की स्थितियों में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है, इसकी पुष्टि उपन्यास की इन पंक्तियों में अवलोकनीय है।

''आजादी के बाद आदिवासियों के कल्याण की सैकड़ों योजनाएं बनी है, पर उनके क्रियान्वयन का क्या हुआ? आवंटित राशि का दस प्रतिशत भी देश के आदिवासियों तक नहीं पहुँच रहा। कई योजनाएँ कागज पर चलती रहती हैं। कई योजनाएँ तो फाइलों की कब्र में ही दफन हो गयी....., यदि अफसरशाही और राजनीति का यही तालमेल कायम रहा तो पता नहीं कितने समय तक आदिवासी समाज इसी तरह अनपढ़, असंस्कृत, भूखा, नंगा, शोषित, उपेक्षित और लोकतंत्र के ज्ञान एवं विज्ञान से कटा-कटा रहेगा।'' इन आदिवासियों पर इतने अत्याचार व शोषण हुए परन्तु इन लोगों ने अपने जनजीवन की जड़े अपनी-अपनी भाषा,

सांस्कृतिक रीति-रिवाज, मिथक और आस्थाओं को छोड़ा नहीं। आज भी इनकी संस्कृति अपने आप में समृद्ध हैं।

इन आदिवासी उपन्यासों में आदिवासियों को केन्द्र में रखकर रचना की गयी है। परन्तु आज कई उपन्यास ऐसे हैं जो बाजार में उपलब्ध नहीं है। आदिवासी उपन्यासों में भारत के ग्रामीण परिवेश का सम्पूण चित्रण मिलता है तथा आदिवासियों की बस्तियों का भी मार्मिक रूप मिलता है।

इस प्रकार इन सारी रचनाओं में विभिन्न आदिवासियों, विभिन्न क्षेत्र में बसी आदिवासियों के जीवन को अपने-अपने ढंग से उपन्यासकारों ने अलग-अलग रूप में चित्रित किया है। जो आवश्यकताओं से वंचित है, जो हर मनुष्य के जीवन जीने के लिए अनिवार्य होती है वे ही उनके पास नहीं है। और कुछ ऐसी भी जातियाँ है जिन्हें संविधान, सरकार आदि विषयों की जानकारी नहीं है। इसलिए हमें इन विषयों पर तथा उनकी समस्याओं को लेकर अध्ययन करना चाहिए और उनकी संस्कृति को समझने का प्रयास करना चाहिए।

सहायक ग्रंथ-

०१- विद्याभूषण, झारखंड और हिंदी उपन्यास (आलेख), हंस, अगस्त, १९९९, पूर्णांक-१५६, अंक-०१, पृ•- ६०

०२- संजीव, संजीव की कथा यात्राः पहला पड़ाव, पृ•-०७

०३- संजीव, धार, पृ•- ३७, १३०, ५६, १६५

०४- संजीव, संजीव की कथा यात्राः दूसरा पड़ाव, पृ•- ०९

०५- वीरेंद्र यादव, उपन्यास का जनतंत्र और हाशिए का समाज (आलेख), आलोचना, जुलाई-सितंबर-२००१, सहश्राब्दी अंक-०६, पृ•-८३

०६- संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता हैं, पृ•-५६

०७- शिवप्रसाद सिंह, शैलूष, पृ•-४७

०८- रमणिका गुप्ता-आदिवासी साहित्य यात्रा, पृ•-१२६

०९- इंद्रनाथ, आधुनिकता और हिंदी उपन्यास, पृ•-१२६,१२७